'पुरुषार्थसिद्धि-उपाय' 'अमृतचन्द्राचार्य' कृत है। ९ वीं गाथा चलती है। अन्तिम पेराग्राफ है, देखो! पृष्ठ १४, अन्तिम पेराग्राफ है। इसका नाम पुरुषार्थसिद्धि-उपाय है। पुरुषार्थ में पुरुष आया, वह पुरुष अर्थात् क्या? पुरुष अर्थात् आत्मा। फिर अर्थ (अर्थात्) सिद्धि का उपाय। तीन शब्द पृथक् (लेते हैं)। पुरुषार्थ, पुरुष का अर्थ, अर्थात् प्रयोजन, उसकी सिद्धि, उसका उपाय। पुरुष अर्थात् यह आत्मा। इसे पुरुष क्यों कहा-यह आ गया। पुर अपना चैतन्यपुर ज्ञानानन्द, ज्ञान-दर्शन—ऐसी चेतना। उसमें जो शयन करें-उसमें प्रवर्ते, उसे पुरुष कहते हैं। सूक्ष्म बात है।

यह आत्मा, इसे पुरुष कहा। पुरुष-पुर चेतना जानना-देखना इसकी चेतना, गुण है, चेतनास्वभाव है, उसमें जो प्रवर्ते, उसमें रहे, उसमें परिणमकर टिके, उसे यहाँ पुरुष

www.vitragvani.com

अर्थात् आत्मा कहा जाता है। पर का कुछ करे, यह आत्मा में नहीं है। आत्मा अपने अतिरिक्त परवस्तु का कुछ करे—ऐसा आत्मा में है नहीं। सुधार और यह सब कर सकता है या नहीं? धीरुभाई! गाँव सुधार, सभी लोगों को करे न!

मुमुक्षु : कोई कुछ कर नहीं सकता।

उत्तर : कोई कुछ कर सकता नहीं, यह कहते हैं। यही यहाँ कहते हैं।

आत्मा करे तो क्या? यह कहेंगे। यह कहा, परन्तु अशुद्ध है न, तब अब उसे अर्थ सिद्धि करनी है, अर्थात् क्या? अर्थ सिद्धि करनी है तो अर्थ सिद्धि नहीं; नहीं तब उसे क्या है? कि चैतन्य भगवान आत्मा अपने शुद्ध ज्ञान-दर्शन में रमें-प्रवर्ते तो उसका नाम पुरुष कहते हैं, तो उसे अर्थ अर्थात् प्रयोजन की सिद्धि — यह अपने स्वरूप में रहे / प्रवर्ते तो जो अशुद्धता है, वह मिटे और शान्ति की सिद्धि हो। उसका उपाय अन्तर स्वरूप में स्थिरता, यह उसका उपाय है। जगत से अलग चीज है।

कहते हैं, यह आत्मा, गुण-पर्याय सहित है। यह बात आ गयी है। अब आज तो **कैसा है पुरुष?** पुरुष अर्थात् आत्मा। **'समुदयव्ययध्रौव्यैः समाहितः'** है नीचे की लाईन? **उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य से संयुक्त है।** क्या कहते हैं? यह आत्मा जो है, इसमें अनन्त गुण हैं। गुण अर्थात् शक्ति स्वभाव, वह तो कायम रहता है। उसकी समय—छोटे में छोटे काल में एक समय, सैकेण्ड का असंख्यातवाँ भाग, ऐसे एक समय में उन अनन्त गुण की वर्तमान अवस्था—दशा से वह उपजता है। गुण की अवस्था एक-एक समय में नयी-नयी होती है, उसे उत्पाद कहते हैं। भाषा भी सुनी न हो! समझ में आया?

भगवान आत्मा वस्तु अनन्त शक्तिसम्पन्न गुण सहभूत त्रिकाल है। गुण-पर्याय कहे थे, उन्हें यहाँ उत्पाद-व्यय-ध्रुव कहा। ये गुण त्रिकाल, जिसमें ज्ञान-दर्शन-आनन्द, ये सहभूत / साथ में रहनेवाले त्रिकाल है। उनकी वर्तमान दशा में उसके गुण की अवस्थारूप दशा का उत्पन्न होना, वह अपना स्वभाव है। अपने से उस गुण की पर्याय को उत्पन्न करता है; पर के कारण उत्पन्न नहीं होती — ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आत्मा अपनी पर्याय अर्थात् अवस्था में, गुण जो त्रिकाल, उसमें से पर्यायरूप स्वयं ही अवस्थारूप क्षण-क्षण में उत्पन्न होता है।

www.vitragvani.com

नवीन अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय का उत्पन्न होना वह उत्पाद,... इसकी व्याख्या की है। नयी-नयी अवस्था ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि की अवस्था नयी-नयी और व्यंजनपर्याय अर्थात् उसमें आकृति की अवस्था नयी-नयी होना। आकार-असंख्य प्रदेशी अरूपी, शरीर से भिन्न अपनी आकृति है। ऐसी आकृति की अवस्था का और दूसरे अनन्त ज्ञानादि गुणों की समय-समय उत्पन्न होनेवाली दशा उत्पन्न हो, उसे उत्पाद कहते हैं। इस बीड़ी, मकान का उत्पाद कर नहीं सकता—ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : निश्चय से नहीं कर सकता।

उत्तर : व्यवहार से भी नहीं कर सकता। समझ में आया? इसकी पर्याय में उत्पन्न कर सकता है। इसकी वर्तमान दशा में, इसकी दशा-अवस्था विकारी या अविकारीरूप से उत्पन्न होने का कर सकता है; दूसरे का कुछ नहीं कर सकता और दूसरे के कारण यहाँ दशा उत्पन्न हो — ऐसा आत्मा में, वस्तु में ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया इसमें?

पूर्व पर्याय का नाश होना.... और इस आत्मा में जो वर्तमान अवस्था हुई, उसे बाद की अवस्था की अपेक्षा से पहले की अवस्था को पूर्व कहते हैं। उस पूर्व पर्याय का व्यय / नाश होना, उसे व्यय कहते हैं। सोने का दृष्टान्त देंगे। नयी अवस्था का, अनन्त गुणरूपी जो भाव, उसकी अवस्था का नया होना, गुण की अवस्था या आकृति की अवस्था; उसे गुण की अवस्था का अर्थपर्याय कहते हैं और आकृति की अवस्था को व्यंजनपर्याय कहते हैं। उससे उत्पन्न हुई अवस्था वह पूर्व पर्याय कही, बाद की अवस्था की अपेक्षा से उसका वहाँ नाश होता है। **पूर्व पर्याय का नाश होना वह व्यय और गुण-अपेक्षा....** और गुण जो है ज्ञान, दर्शन आदि, वे तो कायम शाश्वत् रहते हैं और द्रव्य अर्थात् वस्तु-गुण का पिण्ड, वह वस्तु भी ध्रुव रहती है। **अथवा द्रव्य-अपेक्षा से शाश्वत रहना वह ध्रौव्य है।** कहो, समझ में आया?

जिस प्रकार सोना कुण्डल पर्याय से उत्पन्न होता है,.... सोने की ..... होती है ऐसी, वह कुण्डल की अवस्था से उपजे। कुण्डल, **कंकण पर्याय से नष्ट होता है....** और कड़े की अवस्था से नष्ट होता है। पहले कड़े की अवस्था हो — कड़ा, उसकी अवस्था का नाश होकर कुण्डल की अवस्था हो तो कड़ा की अवस्था का व्यय-अभाव,

www.vitragvani.com

कुण्डल की अवस्था का उत्पाद और **पीतादिक की अपेक्षा....** और उस सोने में पीलापन, चिकनापन, वजन, गुण की अपेक्षा से अथवा द्रव्य की अपेक्षा से **स्वर्णत्व की अपेक्षा सभी अवस्थाओं में शाश्वत है।** यह पीलापन, चिकनापन, वजन अथवा सोना; उस कुण्डल अवस्था का उत्पन्न होना, और कड़ा (रूप) अवस्था का अभाव (हो), उसमें पीलापन, वजन आदि शक्तियाँ तो कायम हैं और शक्तियों का धारक द्रव्य भी कायम है। कहो, समझ में आया इसमें?

इस विशेषण से आत्मा का अस्तित्व प्रगट किया। आत्मा सत्... सत् कहा न? सत्—उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् — ऐसा सिद्ध कर दिया। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्; सत् अर्थात् 'है।' अस्तित्व सिद्ध किया। यह आत्मा, एक-एक आत्मा, हों! भिन्न-भिन्न आत्मा। आत्मा का अस्तित्व सत्पना-होनापना सिद्ध किया। किस प्रकार होनापना है? कि अनन्त गुण का होनापना और उसका एकरूप द्रव्य का होनापना, वह ध्रुव, परन्तु उसकी नयी-नयी अवस्थायें होना, वह उत्पाद; पूर्व की अवस्था का व्यय; ये उत्पाद-व्यय और ध्रुव—ऐसे तीन मिलकर उसका सत्, उसका अस्तित्व-आत्मा का होनापना सिद्ध किया। इस प्रकार आत्मा है। कहो, समझ में आया इसमें? धीरुभाई! सूक्ष्म बातें हैं, हों! यह तुम्हारे सब साहित्य-फाहित्य सबसे मुंडाने की दूसरी बात है। ऐ...ई..!

यहाँ तो आत्मा की बात चलती है। हैं तो सभी पदार्थ ऐसे, हों! प्रत्येक वस्तु, जो अनन्त है, वे स्वयं अस्तिरूप हैं। उस अस्तिपने में प्रत्येक वस्तु में तीन प्रकार (है)। वस्तुरूप से अस्तित्व, उसकी शक्तियाँ जो कायम रहनेवाली हैं, उसपने अस्तित्व और उन शक्तियों की प्रत्येक समय नयी अवस्थारूप से उत्पन्न होना, वह अस्तित्व; और पुरानी अवस्था से व्यय होना, वह भी उसका अस्तित्व है। शशीभाई! यह पाठशाला दूसरे प्रकार की है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

भगवान आत्मा एक-एक (प्रत्येक) भिन्न, ऐसे अनन्त आत्मायें और उनसे अनन्तगुने रजकण-पॉइन्ट-परमाणु, धूल-मिट्टी, जिसे अन्तिम टुकड़ा, जिसे परमाणु कहते हैं। परमाणु तो बहुत प्रकार से परमाणु कहा जाता है, परन्तु यहाँ पुद्गल के अन्तिम टुकड़े को परमाणु कहते हैं। ऐसे पुद्गल परमाणु ऐसे अनन्त रजकण हैं। उस प्रत्येक रजकण में और

www.vitragvani.com

प्रत्येक आत्मा में अस्तिरूप वह पदार्थ है तो अस्तिरूप है, उसका क्या स्वरूप ? कि उसके द्रव्य अर्थात् पदार्थरूप होना; उसकी शक्तियाँ अर्थात् गुण स्वभावरूप होना और उसकी नयी-नयी अवस्थारूप उपजना और पूर्व की अवस्था का बदलना; इस प्रकार उनका-अनन्त द्रव्य का होनापना (अस्तित्व) स्वयं के द्वारा वे टिक रहे हैं। समझ में आया ? **इस विशेषण से आत्मा का अस्तित्व....** अर्थात् सत् **प्रगट किया।** सत् यह है और होनापना, अस्तित्व-होनापना प्रगट किया। कहो, समझ में आया इसमें ?

यह आत्मा... कहते हैं कि **ऐसे चैतन्य पुरुष के अशुद्धता किस प्रकार से हुई जिसके कारण इसे अपने अर्थ की सिद्धि करनी पड़े?** अपने प्रयोजन की सिद्धि करनी पड़े तो इसका अर्थ यह कि उसे वहाँ अशुद्धता वर्तती है तो वह अशुद्धता मिटाकर शुद्धता प्रगट करना, यह इसकी प्रयोजन की सिद्धि। क्या कहा ? 'पुरुषार्थसिद्धि-उपाय' तो पुरुष ऐसा जो आत्मा, उसका अर्थ अर्थात् प्रयोजन, तो प्रयोजन तो उसे सुख का प्रयोजन है। सुख की सिद्धि होना, सुख की प्राप्ति होना। सुख की प्राप्ति होना — ऐसा जो पुरुष अर्थात् आत्मा, उसके अर्थ की सिद्धि, वह किसलिए करना पड़ती है ? क्योंकि जब उसमें अशुद्धता होवे, दु:खरूप दशा होवे तो उसे प्रयोजन की सिद्धि करनी पड़े। तो दु:खरूप दशा है क्यों ? समझ में आया ? कहाँ गये ? रसिकभाई ! आये हैं या नहीं ? कहो, समझ में आया इसमें ?

कहते हैं, ऐसा जो यह पुरुष अर्थात् आत्मा अस्तिरूप इस प्रकार है कि जो वस्तुरूप पदार्थ है और वस्तु है तो उसकी शक्तियाँ भी होती हैं। शक्कर वस्तु है तो उसकी सफेदाई, मिठास आदि उसकी शक्तियाँ-गुण भी होते हैं और गुण हैं तो उसे आत्मा के—द्रव्य के गुण कितने ? एक वस्तु है वस्तुरूप से, उसकी शक्तियाँ अर्थात् गुण; अर्थात् वस्तु जैसे कायम रहनेवाली है, वैसे उसके गुण भी कायम रहनेवाले हैं। वे अनन्त है, परन्तु उनकी वर्तमान दशा का उत्पन्न होना, एक-एक समय की अवस्था का नया होना, पुरानी अवस्था का जाना; उसकी स्थिति एक समय की है; इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य टिक रहा है, अस्तिरूप रहा है। ऐसे आत्मा भी इस प्रकार अस्तिरूप रहा है, परन्तु इस प्रकार अस्तिपना होने पर भी, उसे अशुद्धता किस प्रकार हुई ? क्या कहते हैं ? कि उसे कुछ सुख के उपाय के लिये

www.vitragvani.com

सिद्धि करने का उपाय करना पड़े, तो इसका अर्थ यह हुआ कि इसे वर्तमान में सुख के प्रयोजन की सिद्धि नहीं है।

जगत को तो सुख के लिये छटपटाहट है न? सुख प्राप्त करना... सुख प्राप्त करना... सुख प्राप्त करना... तब सुख प्राप्त करना और सुख का उपाय। अब सुख प्राप्त करना है, तब इसका अर्थ यह है कि इसके पास सुख नहीं है। यदि इसकी दशा में सुख हो तो सुख प्राप्त करना—ऐसा बने नहीं; अत: इसकी दशा में असुख है, अर्थात् दु:ख है, अर्थात् अशुद्धता है, अर्थात् मलिनता है। वह मलिनता किस प्रकार हुई? खोड़ीदासभाई! समझ में आया?

भगवान आत्मा, जब ऐसा गुण-शक्ति और पर्याय सहित है और उपजना, बदलना और ध्रुव इसका अस्तित्व है तो ऐसे आत्मा को प्रयोजन के लिये प्रयत्न की सिद्धि करनी, प्रयत्न से प्रयोजन की—सुख की सिद्धि करनी—तो इसका अर्थ यह हुआ कि इसे अशुद्धता है अर्थात् दु:ख है, अर्थात् आकुलता है; तो वह आकुलता उत्पन्न क्यों हुई कि जिससे उसे मिटाकर सुख की शान्ति का प्रयोजन सिद्ध करना पड़ता है? ठीक है? यह निर्धनता आयी कैसे कि जिससे निर्धनता मिटाकर सधनता करनी पड़े? समझ में आया?

मुमुक्षु : बराबर है।

उत्तर : बराबर है? पूरे दिन बेचारे तड़फड़ाहट मारते हैं या नहीं? ऐसा करूँ तो ऐसा करने से सुख होगा, ऐसा करें तो सुख होगा, ऐसा करें तो ठीक होगा, ठीक होगा। ठीक कहो, सुख कहो, हित कहो, प्रयोजन कहो। ऐसा करेंगे ऐसे (ठीक होगा) तो प्रयोजन करने मथता है, परन्तु वह प्रयोजन क्या करना है—उसका इसे पता नहीं है और प्रयोजन सिद्ध करना है तो वह किसलिए करना है? कि भाई! अन्दर मलिनता है, अशुद्धता है, दु:ख है, आकुलता है। इसकी दशा में आकुलता है। उसका उपजना और व्यय होना, उस आकुलतारूप उपजता है और आकुलतापने से व्यय पाता है। ऐसे आत्मा को अनादि से आकुलता उसकी दशा में है। वह किस प्रकार है? — ऐसा प्रश्न किया है। **जिसके कारण इसे अपने अर्थ की सिद्धि करनी पड़े?** कि वह दु:खरूप दशा क्यों है कि जिसके कारण इसे सुख के प्रयोजन की सिद्धि करनी पड़े? **इसका उत्तर आगे कहते हैं। इसका उत्तर आगे कहते हैं:-** १० वीं (गाथा)।

गाथा - १०

प्रश्न : ऐसे चैतन्य पुरुष के अशुद्धता किस प्रकार से हुई जिसके कारण इसे अपने अर्थ की सिद्धि करनी पड़े? इसका उत्तर आगे कहते हैं:-

परिणममानो नित्यं ज्ञानविवर्त्तैरनादिसन्तत्या।
परिणामानां स्वेषां स भवति कर्त्ता च भोक्ता च।।१०।।

वह अनादि सन्तति से ज्ञान-विवर्तनमय परिणमन करे।
निज परिणामों में परिणमता कर्त्ता-भोक्ता हुआ करे।।१०।।

अन्वयार्थ : (सः) वह चैतन्य आत्मा (अनादिसन्तत्या) अनादि की परिपाटी से (नित्यं) निरन्तर (ज्ञानविवर्त्तैः) ज्ञानादि गुणों के विकाररूप रागादि परिणामों से (परिणममानः) परिणमन करता हुआ (स्वेषां) अपने (परिणामानां) रागादि परिणामों का (कर्त्ता च भोक्ता च) कर्ता और भोक्ता भी (भवति) होता है।

टीका : 'अनादि सन्तत्या नित्यं ज्ञानविवर्त्तैः परिणममानः स्वेषां परिणामानां कर्त्ता च भोक्ता च भवति' - वह चैतन्य पुरुष अनादि की परिपाटी से सदा ज्ञान-चारित्र रहित जो रागादिक परिणाम उनसे परिणमन करता हुआ उन स्वयं के रागादि परिणामों का कर्त्ता तथा भोक्ता भी है।

भावार्थ : इस आत्मा के अशुद्धता नई उत्पन्न नहीं हुई है। अनादिकाल से सन्तानरूप से द्रव्यकर्म से रागादि होते हैं, फिर उन्हीं रागादि से द्रव्यकर्म का बन्ध होता है। स्वर्णकीटिकावत् अनादि से सम्बन्ध है। उस सम्बन्ध के कारण इस जीव को अपने ज्ञानस्वभाव का बोध नहीं है, इसलिए उदयागत कर्मपर्याय में इष्ट-अनिष्ट भाव से राग, द्वेष, मोहरूप परिणमन कर रहा है। यद्यपि इन परिणामों के होने में द्रव्यकर्म कारण हैं, तथापि यह परिणाम चेतनामय हैं इसलिए इन परिणामों का व्याप्य-व्यापकभाव से आत्मा ही कर्ता है। भाव्य-भावकभाव से आत्मा ही भोक्ता है। अब व्याप्य-व्यापकभाव

www.vitragvani.com

का स्वरूप कहते हैं। जो नियम से सहचारी हो, उसे व्याप्ति कहते हैं। जिस प्रकार धुआं और अग्नि में साहचर्य है अर्थात् जहाँ धुआं होता है, वहाँ अग्नि होती ही है अग्नि के बिना धुआं नहीं होता। उसी प्रकार रागादिभाव और आत्मा में सहचारीपना है। जहाँ रागादि होते हैं वहाँ आत्मा होता ही है आत्मा के बिना रागादि नहीं होते। इस व्याप्ति क्रिया में जो कर्म है, उसे व्याप्य कहते हैं और आत्मा कर्ता है, उसे व्यापक कहते हैं। इस प्रकार जहाँ व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध हों वहीं कर्ता-कर्म सम्बन्ध सम्भव है, अन्य स्थान में सम्भव नहीं। इसी प्रकार जो जो भाव अनुभवन करने योग्य हों उन्हें भाव्य, तथा अनुभव करनेवाले पदार्थ को भावक कहते हैं। ऐसा भाव्य-भावक सम्बन्ध जहाँ हो वहीं भोक्ता-भोग्य सम्बन्ध सम्भवित है, अन्य स्थान पर नहीं।।१०।।

गाथा १० पर प्रवचन

परिणममानो नित्यं ज्ञानविवर्त्तैरनादिसन्तत्या।
परिणामानां स्वेषां स भवति कर्त्ता च भोक्ता च।।१०।।

इसका **अन्वयार्थ : वह चैतन्य आत्मा....** है न अन्वयार्थ ? वह भगवान चैतन्य आत्मा। आत्मा, वह चेतन और चैतन्य उसका ज्ञान-दर्शन आदि स्वभाव-गुण, वह चैतन्य। यह चैतन्य-आत्मा जाननेवाला-देखनेवाला स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... **वह चैतन्य आत्मा अनादि की परिपाटी से निरन्तर....** अनादि से कभी वह दशा में शुद्ध था और अशुद्ध नया हुआ—ऐसा है नहीं। अनादि से पहले दशा में आनन्द था, आनन्द था और फिर दुःखी हुआ—ऐसा है नहीं।

अनादि की परिपाटी से निरन्तर.... एक समय भी जिसे सुख की दशा अनादि से प्राप्त नहीं। है क्या ? कि **निरन्तर ज्ञानादि गुणों के विकाररूप....** देखो ! भाषा यहाँ है, मुझे दूसरा कहना है। **'ज्ञानविवर्त्तैः'** शब्द पड़ा है न ? तो कोई ऐसा कहे—ज्ञान का, फिर विपरीतपना कैसे होय ? ज्ञान विपरीतपने परिणमता नहीं; वह तो कम होता है और या उसका अभाव होता है। समझ में आया ? खानिया(चर्चा में) यह तकरार ली है। ज्ञान से

www.vitragvani.com

विरुद्ध, वे रागादि हैं। ज्ञान से विरुद्ध रागादि कहाँ से हों? यहाँ यह शब्द पड़ा है, देखो! यह तो अभी भी पढ़ा है।

'ज्ञानविवर्त्तैः' ज्ञान शब्द से चैतन्यस्वरूप पूरे गुण सब। भगवान आत्मा वस्तुरूप से, शक्ति के पिण्डरूप से और उसकी अनन्त ज्ञानादि शक्तियाँ जो हैं, वे **विकाररूप....** उनकी दशा में **विकाररूप रागादि परिणामों से परिणमन करता हुआ....** अनादि से भगवान आत्मा में वे अनन्त जो गुण-शक्ति, सत्व त्रिकाल हैं, उनकी वर्तमान दशा में अनादि से राग-द्वेष विकार की वासनारूप परिणमना, परिणमना अनादि का है। है? परिणमना अर्थात् होना। **विकाररूप रागादि परिणामों से परिणमन करता हुआ....** कर्ता सिद्ध करते हैं, कर्ता सिद्ध करते हैं। राग-द्वेष, पुण्य-पाप के विकाररूप अनादि से परिणमता हुआ, कर्ता होकर कार्य करता हुआ—ऐसा कहते हैं। कर्ता और भोक्ता सिद्ध करते हैं न? समझ में आया? दूसरा करता नहीं; दूसरे का इसने किया नहीं, दूसरे का कर सकता ही नहीं। यह क्या कहा?

अनादि से अपने राग-द्वेष के परिणामरूप परिणमता हुआ; विकाररूप अनादि से कर्ता होकर कार्यरूप परिणमता हुआ - यह दोनों सिद्ध किये। इसने अनादि से किया है विकार का कर्ता होकर विकाररूप परिणमा; इसके अतिरिक्त इसने कुछ किया नहीं। परन्तु किसका करे? दूसरे सब पदार्थ अपना अस्तित्व रखकर नयी-नयी अवस्थारूप से उपजें और बदलें, यह तो उनका स्वयं का सत् है। उनके सत् में यह हाथ डाले कि मैं तुझे बदलाऊँ, वह कैसे बदल सके? धीरुभाई! बहुत सूक्ष्म बात है, हों! न्याय से कहा नहीं जाता यह?

कोई भी वस्तु है, वह है; उसके तीन अंश हैं। कोई भी पदार्थ हो, उसके तीन अंश होते हैं। क्यों? कि वह स्वयं कायम रहता है, इसलिए ध्रुव अंश होता है और क्षण-क्षण में उसमें बदलना होता है, इसलिए उसे उत्पाद और व्यय अंश होते हैं। एकरूप नहीं रहता। एकरूप होवे तो यह पलटना प्रत्यक्ष दिखता है, तो पलटने के अंशों से भी सत् है और टिकने के अंश से भी सत् है। दूसरे सभी पदार्थ भी पलटने के अंश से स्वयं सत् है। उन्हें यह दूसरा पलटावे-यह कैसे बने? तब तो उसका पलटने का सत् है, वह चला जाए। समझ में आया?

www.vitragvani.com

अनादि की सन्तति; सन्तति अर्थात् परिपाटी। नयी अशुद्धता नहीं हुई, दशा में नयी मलिनता नहीं हुई। वह मलिनता इसकी पर्याय में अनादि की है। पर्याय अर्थात् हालत-दशा में। उससे निरन्तर रागादि, राग-द्वेष, पुण्य-पाप के विकल्प आदि विकार, उस (रूप से) परिणमता हुआ, उसरूप अवस्था को करता हुआ, राग-द्वेष के विकारी परिणाम को अनादि से निरन्तर-समय का अन्तर पड़े बिना निरन्तर परिणमता, करता हुआ। समझ में आया? दुकान का, मकान का कुछ किया नहीं—ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :.....

उत्तर : यह समझ में आता है, परन्तु किसे? किसे? उसका उत्पाद किसमें हुआ? समझने की पर्याय का उत्पाद किसमें हुआ? यहाँ तो यही बात चलती है। किसी निमित्त में उत्पाद हुआ या निमित्त के कारण हुआ या स्वयं से हुआ? पूरी हो गयी बात, उड़ गयी सब।

एक क्षण में भी उस वस्तु में उन गुणों का उपजनेरूप पर्याय का अस्तिपना उस क्षण में है या नहीं? तो उस क्षण में उत्पाद जो नयी अवस्था हो, वह उसमें होती है, उससे होती है या दूसरे से होती है या दूसरे में होती है? इसमें लॉजिक से—न्याय से समझना पड़ेगा या नहीं?

मुमुक्षु : ....

उत्तर : परन्तु जाए कहाँ? जाए कहाँ और आये कहाँ? प्रत्येक समय में... ए लड़को! अन्दर आओ। वहाँ बातें करेंगे, अन्दर आ जाओ सब। यह सुनने जैसा है, यह झपकी खाने जैसा नहीं है। क्या कहते हैं?

यह तो बहुत सादी भाषा से आता है, इसमें कहीं कोई ऐसी (कठिन भाषा नहीं है)। वस्तु जो है भगवान आत्मा, उसकी शक्तियों का पिण्ड, उसे पदार्थ कहते हैं और उसकी अनेक शक्तियों को गुण कहते हैं। उनकी प्रतिक्षण कुछ भी अवस्था न हो तो कार्य बदले नहीं। वह नयी-नयी अवस्था बदलती है, तो कहते हैं कि अनादि की अवस्था, राग-द्वेष और पुण्य-पाप के परिणामरूप परिणमता वह बदल रहा है। समझ में आया? कहो, ठीक है?

www.vitragvani.com

अपने रागादि परिणामों का.... देखो! यह अनादि से अपने में राग और द्वेष, शुभ और अशुभभाव—ऐसे विकाररूप पर्याय अर्थात् अवस्था में नयी-नयी अवस्थारूप उपजता हुआ, पुरानी अवस्था के बदलने से-व्यय से नयी-नयी रूप होता उसका—उस विकार का कर्ता आत्मा होता है। कहो, ठीक है? **और भोक्ता भी होता है।** वे विकारी परिणाम जो राग और द्वेष के उत्पन्न करता है, उनरूप परिणमता है, वह उसका कार्य हुआ और उसका कर्ता वह आत्मा है तथा उस विकार को भोगता है; भोग्य वह है और आत्मा भोक्ता है। यह उसका भोक्ता-भोग्य विकारीभाव है। इसने अनादि से किया हो तो विकारी परिणाम को सतत् कर्ता होकर विकार का कार्य करता है। भोग हो तो अनादि से विकारी परिणाम को भोक्ता हुआ भोग्य, विकार को भोग्य बनाया है। परवस्तु को भोग्य बनाया है और परवस्तु (को) भोक्ता है, यह इसकी चीज में तीन काल में कभी नहीं। कहो, समझ में आया इसमें?

कर्ता और भोक्ता भी होता है। 'परिणामानां' परिणमता हुआ। परिणमता हुआ तो अकेला कर्ता हुआ, इसलिए कहते हैं कि **'परिणामानां कर्त्ता च भोक्ता'** कर्त्ता और भोक्ता भी होता है। इसके अन्तर में इसकी विकारीदशा परिणमति है-होती है, उसका यह कर्ता है। यह विकारीदशा, यह इसका कर्म अर्थात् कार्य है। यह विकारीदशा इसका भोग्य है; उसका यह आत्मा भोक्ता है। कहो, समझ में आया? इसने कभी दाल-भात को भोगा नहीं, इसने तीन काल-तीन लोक में कभी स्त्री को भोगा नहीं अथवा मकान को भोगा नहीं। क्या भोगा है? इसका भोग्य क्या है? भोगने के योग्य क्या है? यह विकारीभाव जो करता है, वह इसका भोग्य है। उसका भोक्ता आत्मा (है)। परवस्तु भोगनेयोग्य, आत्मा भोक्ता, यह वस्तु में है नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? इसकी टीका! ये तो महासिद्धान्त हैं, हों! तुम्हारे वकालात के कोर्ट के कायदे सब समझने जैसे हैं। यह तो महासिद्धान्त है।

टीका : वह चैतन्य पुरुष.... यह वह चैतन्यपुरुष अनादि का **अनादि की परिपाटी....** परिपाटी—ऐसे एक के बाद एक, एक के बाद एक, एक के बाद एक अनादि से। **सदा ज्ञान-चारित्र रहित....** सदा ही आत्मा के ज्ञान की निर्मल पर्याय और शान्ति की स्थिरता, इससे अनादि से वह रहित है। आत्मा का सम्यग्ज्ञान और आत्मा की

www.vitragvani.com

शान्ति की स्थिरता से वह अनादि से रहित है। **जो रागादिक परिणाम....** उससे रहित जो रागादि परिणाम—पुण्य और पाप के परिणाम, चाहे तो दया, दान, व्रत के शुभभाव हों; तथापि वे ज्ञानादि और चारित्ररहित परिणाम हैं। कहो, बराबर है ? है इसमें ? आत्मा में दया, दान, भक्ति, शुभराग होओ या हिंसा, झूठ, भोग का अशुभराग होओ; उस राग में ज्ञान और शान्ति का अभाव है। है ?

सदा ज्ञान-चारित्र रहित जो रागादिक परिणाम.... जिसमें सम्यग्ज्ञान की दशा नहीं, जिसमें सम्यक् शान्ति की स्थिरता नहीं—ऐसे स्थिरता और सम्यक् ज्ञान के भावरहित पुण्य और पाप के परिणाम; **उनसे परिणमन करता हुआ....** शुभ और अशुभराग द्वारा होता हुआ, परिणमता हुआ, कर्ता होकर कर्म / कार्य करता हुआ। समझ में आया ? वे कैसे परिणाम हैं ? शुभ और अशुभ की दशा (कैसी है) ? कि ज्ञान और शान्ति से रहित है। ऐसा कहा ? चाहे तो शुभराग हो, चाहे तो अशुभरागरूप होओ, परन्तु उनमें ज्ञान का—ज्ञानस्वभाव का ज्ञानपना नहीं आया और उनमें चारित्र की शान्ति भी नहीं। आहा.. !

कहते हैं, **अनादि की परिपाटी से सदा....** कोई एक समय इसका आत्मा के ज्ञान और शान्ति में आया नहीं। अनादि से... यह क्या कहना चाहते हैं ? यह अशुद्धता से परिणमा है क्यों ? समझ में आया ? कि जिससे इसे अर्थ की सिद्धि करनी पड़े; जिससे इसे सुख की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना पड़े। अनादि से इसे वापस परिपाटी—एक के बाद एक, एक के बाद एक हुई। (जैसे) साँकल में एक के बाद एक कड़ी होती है, वैसे एक के बाद एक परिपाटी; और वह सदा अनादि से है। ज्ञान और चारित्र (अर्थात्) स्व स्वरूप का स्वसंवेदन ज्ञान और स्वस्वरूप में स्थिरतारूप शान्ति-चारित्र के भाव से रहित शुभ और अशुभराग से होता हुआ, परिणमता हुआ अनादि जीव है।

स्वयं के रागादि परिणामों.... अपने जो रागादि परिणाम, देखो! विकार के परिणाम—शुभ-अशुभ (परिणाम) हुए, वे अपने हैं, अपनी दशा में हैं; किसी के नहीं। अपनी जो रागादि पर्याय—शुभ और अशुभ पर्याय हुई, उसका वह कर्ता भी होता है। इससे क्या कहा ? परिणमता हुआ। परिणमता हुआ-यह तो कार्य हुआ; इसलिए उसका कर्ता भी है, ऐसा। परिणमता हुआ, यह तो कर्म हुआ और परिणमता हुआ, उसका कर्ता भी है।

www.vitragvani.com

उसका करनेवाला, रचनेवाला भी वह आत्मा है। समझ में आया? यह तो 'विदुषाम्' लिखा था नहीं? परमागम में से हम यह उद्धृत करेंगे। पण्डितों के लिये यह पुस्तक 'पुरुषार्थसिद्धि-उपाय' है, ऐसा अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। समझ में आया?

उनका (रागादि परिणामों का) कर्त्ता तथा भोक्ता भी है। अर्थात् क्या कहा? कि भगवान आत्मा अनादि की उसकी दशा में पुण्य और पाप के रागादिरूप परिणमता हुआ उनका कर्ता भी होता है और उस विकारी परिणाम का वह आत्मा अनादि से भोक्ता भी होता है। बात बहुत सीधी और संक्षिप्त की है। समझ में आया? पर का बिल्कुल कर्ता भी नहीं; आत्मा के अतिरिक्त शरीर, वाणी, स्त्री-पुत्र, परिवार, देश—ऐसे परपदार्थ का किंचित् कभी उसरूप परिणमा नहीं, इसलिए उनका कर्ता नहीं। उनरूप यह हुआ नहीं, इसलिए उनका यह भोक्ता नहीं।

कहो! दाल, भात, सब्जी के समय यह उनके पर परिणामरूप होता है या उनका कर्ता हो? यह तो अपने परिणामरूप परिणमता है; और (यदि) पर के परिणाम को भोगता है तो पर परिणाम में प्रवेश करे तो भोगे; तो इसका पर परिणाम में प्रवेश (है नहीं)। अपने परिणाम में स्वयं हर्ष-शोक करे, हर्ष-शोक करे और उन्हें भोगे; मानता है मूढ़ कि मैं इस शरीर को भोगता हूँ, माँस को भोगता हूँ, लड्डू को भोगता हूँ। समझ में आया? गजब बात! यह किस तरह की बात! पूरे दिन ये सब सुधरे हुए बड़े-बड़े होशियार बड़े कितने काम करे! पर्वत के पर्वत तोड़ डाले, फाड़ डाले, पानी के बड़े बाँध बनावे। करते हैं या नहीं? यहाँ अपने बन्ध नहीं? ऐकल्या! कोई करे नहीं बापू! तुझे पता नहीं भाई! तू कहाँ खड़ा है, वह कहाँ रहा है तू? यह खबर है उसे? वह परमाणु में रहा है? वह रहा है अपने गुण और पर्याय दशा में।

मुमुक्षु : बाहर निकलता नहीं।

उत्तर : बाहर निकल सकता नहीं तो रहा है कहाँ? यह तो बताते हैं कि तेरे मूढ़ की मूढ़ता तो देख। तुझे क्या होता है, इसका तुझे पता नहीं और दूसरे में होता है, इसका तुझे पता नहीं। पूरे गाँव का करे। समझे न? पहले शुरु करना घर से, फिर कुटुम्ब का, फिर जाति का, फिर गाँव का, फिर यह माने न स्तर बड़ा? फिर प्रान्त और फिर देश और फिर

www.vitragvani.com

विश्व का। ओहोहो! क्या करता है परन्तु तू? एक ओर कहे कि विश्व अर्थात् अनन्त पदार्थ हैं—ऐसा कहे और फिर तू कहे कि एक मैं दूसरे अनन्त दूसरों का करूँ, यह तेरा अनन्तपना भिन्न रहा कहाँ? समझ में आया? आहाहा! अनादि का भारी भ्रम है।

भावार्थ : इस आत्मा के अशुद्धता नई उत्पन्न नहीं हुई है। यह सिद्ध करते हैं। अनादि की कहा न? **'अनादि सन्तत्या'** इसकी दशा में, हालत में, पर्याय में, वर्तमान भाव में मलिनता, जो पुण्य-पाप और दुःख की दशा है, वह नयी नहीं हुई; अनादि की है। आत्मा को नयी अशुद्धता नहीं हुई। अशुद्धता है या नहीं? यदि अशुद्धता न हो तो इसे सुख के लिये ललक न हो। तब तो सुखी ही हो। तो कुछ करना तो चाहता है। कुछ दुःख टालना चाहता है और सुख प्राप्त करना चाहता है—ऐसा तो सिद्ध होता है। इसका अर्थ यह कि इसकी दशा में दुःख है, सुख नहीं। अब उस दुःख को मिटाने के लिये प्रयत्न करे तो इसका अर्थ कि यह दुःखी है वर्तमान दशा में। यह दुःखी पर के कारण नहीं। निर्धनता, वह दुःख नहीं, आहार-पानी का संयोग न होना, वह दुःख नहीं; इसकी दशा में राग और द्वेषरूप होना, वह दुःख है। समझ में आया?

अब जहाँ दुःख है, उसे पता नहीं और उसे टालना (चाहता है)। ये संयोग आये, वह दुःख है, इन्हें धक्का दो। इन्हें धक्का देने से दुःख मिटेगा? और यह धक्का से तुझसे दूर होगा? पहले ऐसा है, ऐसा है, है वैसा कहते हैं। ऐसा मानता है कि हमें यह प्रतिकूलता है—आहार नहीं मिलता, पानी नहीं मिलता, शरीर में रोग है, वह दुःख है—यह बात ही झूठ है। वह तो जड़ की-पर की दशा है। पर का उत्पाद, पर में होता हुआ वह उत्पाद तुझे कहाँ दुःखरूप (दशा) उत्पन्न कराता है? तेरा उत्पाद दुःख की दशा-यह ठीक नहीं—ऐसा उत्पाद तो तू खड़ा करता है। तेरी दशा में राग और विकार को उत्पन्न करके दुःख की दशा तूने उत्पन्न की है। तुझमें की है, पर के कारण नहीं, पर के कारण नहीं, पर में नहीं। एक भी तत्त्व का पता नहीं होता और ऐसा का ऐसा चला जाता है पागल की तरह। समझ में आया? गांडा समझते हो? पागल। हमारे यहाँ काठियावाड़ी (भाषा में पागल को) गांडा कहते हैं।

भावार्थ : इस आत्मा के अशुद्धता नई उत्पन्न नहीं हुई है। क्यों? कि इसे

www.vitragvani.com

प्रयोजन सिद्ध करना है, सुखी नहीं, ऐसा। अनादि से दु:खी है। बेचारा दु:खी है। अशुद्धता कहो या दु:ख कहो। राग-द्वेष के भाव कहो या दु:ख कहो; और यदि दु:ख न हो तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति आत्मा है तो उसे अतीन्द्रिय आनन्द का वर्तमान दशा में आनन्द का-मजा का अनुभव होना चाहिए। यह अतीन्द्रिय सच्चिदानन्द प्रभु है। सत्, चित् और आनन्द, आनन्द-अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है। यदि इसकी दशा में दु:ख न हो तो अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन प्रत्यक्ष होना चाहिए; वह है नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द का अभाव तो इन्द्रिय की ओर की दु:ख की दशा का सद्भाव। शोभालालजी! दु:ख है दु:ख, कहते हैं। ये पैसेवाले करोड़पति, पाँच-पाँच (करोड़) कोई चालीस करोड़.... ऐ...ई...! दु:खी है—ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : .....

उत्तर : उसके कारण कहाँ है? यह तो इनकार किया है। आहाहा! सत्य की दृष्टि अलग और अज्ञानी की दृष्टि अलग। अरबों रुपये ऐसे पड़ हों तो उनके कारण यहाँ सुख की कल्पना है? मानता है कि मैं सुखी हूँ। वह कल्पना तो दु:ख है, दु:ख है। दु:ख स्वयं ने खड़ा किया है, शूल स्वयं ने खड़ा किया है। यह गजब, भाई! कहो, समझ में आया इसमें? इसमें समझ में आया? यह करें इसमें (समझ में आया?) ऐसा कहा जाता है। पहला तो... गजब इस दुनिया की, दुनिया की पाठशाला अलग, यह पाठशाला अलग है। समझ में आया?

भगवान आत्मा वस्तुरूप से सत् है। अस्तिरूप से है तो उसके अस्तिपने के कायम में तो दु:ख है नहीं; उसकी वर्तमान दशा में अनादि से अशुद्धता कहो, मलिनता कहो, दु:ख कहो, आकुलता कहो, राग-द्वेषभाव कहो। ऐसी अशुद्धता अनादि से इसकी दशा में हो रही है। समझ में आया?

अनादिकाल से सन्तानरूप से द्रव्यकर्म से रागादि होते हैं,.... अब निमित्त कहा। रागादि, रागादि होते हैं, उसमें निमित्त कौन है? पूर्व की जड़कर्म। इसका लक्ष्य पर के प्रति जाता है। आत्मा पर जाए तो वह तो आनन्द की मूर्ति है। अर्थात् अनादि से इसका लक्ष्य पर के प्रति जाता है। पर कौन? कि यह जड़ कर्म है वह। भले उसे पता न हो। समझ

www.vitragvani.com

में आया? द्रव्यकर्म, रागादि, जड़ कर्म मिट्टी के परमाणु पड़े हैं। वे भी उनके उत्पाद से हुए हैं, हों! वे रजकण, परन्तु उनके लक्ष्य में जाने से अज्ञानी को स्व का लक्ष्य अनादि से छूटा है, इस कारण उसे पर के लक्ष्य से, अर्थात् परवस्तु निमित्त है, उसमें स्वयं को राग-द्वेष स्वयं में होते हैं। कहो, समझ में आया?

रागादि से द्रव्यकर्म का बन्ध होता है। और जो राग तथा द्वेष दुःखरूप दशा करता है, वे नये कर्म बँधते हैं, उसमें ये राग-द्वेष निमित्त हैं, निमित्त हैं। नये जड़कर्म-मिट्टी बँधे, उसे ये राग-द्वेष निमित्त हैं और इन राग-द्वेष को पूर्व का कर्म निमित्त है। ऐसी अनादि से शृंखला / निमित्त-नैमित्तिक चला आ रहा है। समझ में आया? **रागादि से द्रव्यकर्म का बन्ध होता है।**

स्वर्णकीटिकावत् अनादि से सम्बन्ध है। दृष्टान्त देते हैं। सोना और पत्थर खान में होता है न? पत्थर और सोने की... सोने का पत्थर निकलता है न? वह सोना और मिट्टी दोनों अनादि से शामिल ही है। **उस सम्बन्ध के कारण इस जीव को अपने ज्ञानस्वभाव का बोध नहीं है,....** सुवर्ण और कीटिका की तरह आत्मा को और कर्म को... कर्म अर्थात् जड़ सत्ता, आत्मा सोना। यह सोने को और पत्थर को, एक खान में होता है न पत्थर? फिर लाते हैं न? मुम्बई में बड़े कारखाने होते हैं न? सोना अलग करे और पत्थर अलग पड़ जाए। अनादि खान में जैसे सोना और पत्थर एक सम्बन्ध से दिखायी देता है-साथ में है; वैसे आत्मा अनादि से अपने विकारभाव को करे, उसमें जड़ कर्म का संयोग सम्बन्ध है।

उस सम्बन्ध के कारण इस जीव को अपने ज्ञानस्वभाव का बोध नहीं है,.... अनादि का पर के सम्बन्ध के लक्ष्य में गया है, इस कारण स्व स्वभाव में समवाय सम्बन्ध में आनन्द के साथ मेरे आत्मा को सम्बन्ध है—ऐसे ज्ञानस्वभाव का इसे बोध नहीं है। मैं एक जाननहार चैतन्यमूर्ति हूँ, ज्ञायक चैतन्यसूर्य हूँ, जानने के अस्तित्ववाला जो गुण है, वह चैतन्यसूर्य स्वभाव है। ऐसे ज्ञानस्वभाव की, अनादि से पर के लक्ष्य से जुड़ा हुआ, सोना जैसे कीटि और पत्थर के साथ जुड़ा हुआ है, उसे पृथक् सोने का बोध नहीं है; इसी प्रकार इसे अपने स्वरूप का, पर के सम्बन्ध के लक्ष्य से अनादि से राग में

www.vitragvani.com

(परिणमता) हुआ, विकाररूप होता हुआ, इसे ज्ञानस्वरूप-चैतन्यस्वरूप का इसे अनादि से बोध नहीं है।

इसलिए उदयागत कर्मपर्याय में.... इसलिए जो कुछ कर्म की दशा उदय में आवे, उसमें **इष्ट-अनिष्ट भाव से....** यह ठीक-अठीक—ऐसे भाव द्वारा, **राग, द्वेष, मोहरूप परिणमन कर रहा है।** बाह्य पदार्थ मिले, उसमें 'यह ठीक है, यह अठीक है' — ऐसे पर की सावधानी में राग-द्वेषरूप परिणमा, हुआ (है)। परिणमा अर्थात् हुआ। उदयागत कर्म दशा में, कर्म की अवस्था में इष्ट-अनिष्ट — यह ठीक और अठीक (करता है।) शरीर सुन्दर तो ठीक, रोग अठीक; बाहर की प्रतिकूलता अठीक, अनुकूलता ठीक—ऐसी कल्पना में अज्ञानी अनादि से **इष्ट-अनिष्ट भाव से राग, द्वेष, मोहरूप परिणमन कर रहा है।** पर की सावधानी में गया, अपने स्वरूप की सावधानी को अनादि से चूका हुआ, अपने शुद्ध आनन्दस्वरूप की सावधानी से अनादि से चूका हुआ, पर के लक्ष्य की सावधानी में गया हुआ, अनादि से राग-द्वेष और मोहरूप हो रहा है। समझ में आये ऐसा है, हों! इसमें नहीं समझ में आये ऐसा नहीं है। यह कोई बहुत सूक्ष्म नहीं है। समझ में आया?

यद्यपि इन परिणामों के.... जो कुछ स्वयं राग और द्वेष, पुण्य और पाप मलिन अशुद्धतारूप भाव (होते हैं), उन्हें द्रव्यकर्म का निमित्त है। जड़ कर्म का **कारण है....** कारण अर्थात् निमित्तकारण, हों! पूर्व का कर्म निमित्त है। यहाँ स्वयं करता है तो उसे निमित्त कहा जाता है। **तथापि यह परिणाम चेतनामय हैं....** राग और द्वेष, पुण्य और पाप तथा विकल्प की वृत्तियाँ, वे चेतना की दशा में-अस्तित्व में हैं; इसलिए उन्हें चेतनामय कहा है। वे कहीं जड़ रजकणरूप नहीं है वह दशा। समझ में आया? चिदाभास। राग और द्वेष, दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के परिणाम, वे सब विकार हैं। वह विकार, चेतनामय है। चेतना उसमें चेत गयी है। राग-द्वेष में एकाग्र चेतना होती है। वह चेतना की दशा है, जड़ की नहीं, मिट्टी की नहीं, कर्म की नहीं।

इसलिए इन परिणामों का व्याप्य-व्यापकभाव से आत्मा ही कर्ता है। लो! इन **परिणामों का व्याप्य-व्यापकभाव....** जो विकारी परिणाम हुए, शुभ-अशुभ

www.vitragvani.com

रागादि हुए, अशुभ मलिन पर्याय हुई, उसके परिणामों में व्याप्य-व्यापक (अर्थात्) परिणाम, वह व्याप्य और आत्मा व्यापक—ऐसा व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध विकार के परिणाम के साथ आत्मा को है; पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। देखे! कर्म को कारण कहा था, परन्तु उसके साथ व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध नहीं है। कर्म, वह व्यापक अर्थात् करनेवाला और विकारी परिणाम उसका व्याप्य अर्थात् कर्म—ऐसा नहीं है। आत्मा, विकारी परिणाम का व्यापक अर्थात् करनेवाला और व्याप्य अर्थात् उसका काम, वह आत्मा का है, जड़कर्म का नहीं। समझ में आया?

अशुद्धता इस प्रकार तूने खड़ी की है—ऐसा कहा है। तीन बोल लेंगे — व्याप्य, व्याप्ति और व्यापक — तीन बोल लेंगे। दो बोल लिये, परन्तु अब समझाना है क्रिया को। व्याप्ति-क्रिया। क्या कहते हैं? कि यह आत्मा वर्तमानदशा में, हालत में... पर्याय कहो हालत कहो, अवस्था कहो, (सब एकार्थ हैं)... अनादि से राग और द्वेष की विकारी पर्यायरूप परिणमता व्याप्य-व्यापक का उनके साथ सम्बन्ध है। वे परिणाम हैं, वे व्याप्य अर्थात् हुआ कार्य है (और) आत्मा उनका रचनेवाला, इसलिए उनका व्यापक, कर्ता है। समझ में आया? कर्म उनका व्यापक और विकारी परिणाम उसके व्याप्य (-ऐसा नहीं)। (यहाँ) कर्म अर्थात् कार्य—ऐसा नहीं। गजब बात भाई! भाषा नये प्रकार की; कभी इसकी पाठशाला में नहीं आयी हो, पढ़ा हो उसमें नहीं आया हो, एल.एल.बी. पढ़ा पूंछड़ा (डिग्री) तो उसमें यह न आया हो, लो! वकालात में ऐसा आया न हो?

अरे! आत्मा की स्थिति क्या हो रही है? — इसका इसे पता नहीं है और पर में भी उसके कारण क्या हो रहा है?—इसका इसे पता नहीं है। जिस क्षण में जहाँ-तहाँ खड़ा हो, वहाँ दूसरे पदार्थ में इससे अन्य में कुछ पलटकर क्रिया होती हो, वह किसके कारण होती है?—इसका इसे पता नहीं है; तथा उस समय मुझे रागादि होते हैं—वे किसके कारण होते हैं? उसके कारण होते हैं या मेरे व्याप्य-व्यापक के कारण होते हैं—इसका इसे पता नहीं है। समझ में आया?

इन परिणामों का व्याप्य.... अर्थात् अवस्था, **व्यापक....** अर्थात् पदार्थ, कायम रहनेवाला। कायम रहनेवाले को व्यापक कहते हैं और वर्तमान होनेवाली नयी

www.vitragvani.com

अवस्था को व्याप्य / काम कहते हैं। उस काम का कर्ता आत्मा है। आत्मा कर्ता और वह काम—ऐसा सम्बन्ध है, परन्तु परद्रव्य कर्ता और यह काम—ऐसा सम्बन्ध है नहीं।

इसी तरह परद्रव्य वस्तु है, उसका व्यापक वह परवस्तु है, उसकी वर्तमान दशा उसका व्याप्य है। यह व्याप्य और व्यापक सम्बन्ध उसके द्रव्य का उसके साथ है। उस द्रव्य का व्याप्य-काम, आत्मा व्यापक-कर्ता होकर करे—ऐसा आत्मा और पर में सम्बन्ध तीन काल में है नहीं। गजब बात, भाई! बीड़ी जलानेवाला बीड़ी के ऊपर क्या करे? मुँह... मुँह टीमरु का वह क्या कहलाता है? आपटो! आपटो होता है न? आपटा नहीं कहते? बड़ी के पत्ते-पत्ते को क्या कहते हैं? आपटा का पत्ता और टीमरु का पत्ता, दो प्रकार के आते हैं न? नहीं आते? आपटा के छोटे-छोटे पत्ते (हो हैं), वहाँ हमारी दुकान में बहुत होता न? बड़ा व्यापार था। कुँवरजीभाई का बड़ा व्यापार। 'उमराला' से मँगाते थे। लाखों बीड़ी, लाखों बीड़ी। पहले (था), अब दूसरा धन्धा हो गया, बीड़ी निकाल दी। आपटा के इतने-इतने छोटे पत्ते होते हैं न? वे आपटा कहलाते हैं, पहले टीमरु (कहलाते हैं) टीमरु के तो एक ही पत्ते की बीड़ी होती है, आपटा में तो दो, तीन पत्ते चाहिए। छोटे-छोटे होते हैं न? उन्हें इकट्ठे करके... कहते हैं कि वह कार्य तेरा नहीं-ऐसा कहते हैं, क्योंकि वे परमाणु अस्ति है... है। है या नहीं? है वह दिखे या नहीं हो वह दिखे? है; तो है वह अस्ति है या नास्ति? अस्ति है। तो अस्ति में तीन अंश हैं। उसके परमाणु में रजकण का टिकना, नयी अवस्था का होना, पुरानी का जाना। ऐसी नयी अवस्था का होना—ऐसा जो व्याप्य, उसके साथ उसके रजकण व्यापक हैं; आत्मा उनकी अवस्था को व्याप्य करे—ऐसा आत्मा में कोई सम्बन्ध है नहीं। आज दृष्टान्त में सेठ की बीड़ी आयी। कहो, समझ में आया? हर समय दूसरे दृष्टान्त देते हैं। यह तो कर्ता सिद्ध किया। बाद में व्याप्य-व्यापक की व्याख्या करेंगे।

भाव्य-भावकभाव से आत्मा ही भोक्ता है। पाठ में कर्ता-भोक्ता शब्द है न? उसे सिद्ध करते हैं। भगवान आत्मा अपनी वर्तमान दशा में जो अनादि से राग और द्वेष—जो अशुद्धता करता है, वह अशुद्धता उसका व्याप्य अर्थात् काम और आत्मा उसका व्यापक अर्थात् कर्ता (है)। इसी तरह आत्मा ही अपने परिणाम का भोग्य, आत्मा उसका

www.vitragvani.com

भोक्ता। भाव्य अर्थात् विकारी परिणाम, वह भाव्य है, भोगने के योग्य है। भावक, वह आत्मा, वह भोगने को योग्य भोक्ता है। भाव्य-भावकभाव। आहाहा! समझ में आया?

भाव्य अर्थात् भोगनेयोग्य परिणाम; भावक (अर्थात्) भोगनेवाला—ऐसा जो भाव, भाव्य-भावकभाव से आत्मा स्वयं अपने विकारी परिणाम का भोक्ता है। दूसरे परिणाम की दूसरी दशा को आत्मा भोग नहीं सकता, तथा अपनी पर्याय को दूसरा भोगे—ऐसा होता नहीं; वैसे ही दूसरे की दशा को यह भोगे—ऐसा बनता नहीं, क्योंकि दोनों के सत् का अस्तित्व भिन्न-भिन्न रहा है। समझ में आया? कहो, धीरुभाई! यह कहते हैं, गाँव का कुछ कर सकता नहीं... ऐसा कहते हैं। यह पुस्तक-बुस्तक तो हराम बनाता हो आत्मा। यह रजकण की पर्याय लकवा हो ऐसी है। बहुत इसे प्रेरणा करे, किसकी चले? यह तो इसे चलना हो तो चले, तुझसे कुछ है नहीं। समझ में आया? व्याप्य-व्यापकभाव अर्थात् क्या—इसकी बात बाद में करेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)